

विषय-सूची

पृष्ठ	विषय	पृष्ठ	विषय	पृष्ठ	विषय
१	मंगलाचरण	१७	दर्शन स्वरूप	३५	मिश्रता
२	परमात्मा की	१८	ज्ञान स्वरूप	३६	समाधि
३	आनम तीन	१९	चारित्र्य स्वरूप	३७	अरहत सिद्ध
४	परमात्मा की	२०	पुण्यपाप स्वरूप	३८	मय महिमा
५	देह में परमात्मा	२१	शुद्धोपदेश	४१	भावदृष्टि
६	जीव अजीव न	२२	ज्ञान की महिमा	४२	आत्म निर्णय
७	तत्काल निरा	२३	मयक भाव	४३	व्यवहार निषेध
८	द्रव्य स्वरूप	२४	अज्ञान दशा	४४	त्रिवेक सूचक
९	मिथ्यादृष्टि की	२५	ममदृष्टि रसो	४५	धर्म प्रेरणा
१०	सम्यग्दृष्टि की	२६	परसग निषेध	४६	स्वपर बोध
११	आत्मोपदेश	२७	वैराग्य की	४७	वैराग्य
१२	ज्ञान की प्रधा	२८	त्रिषय निषेध	४८	दया-हेय
१३	आत्मा की प्रधा	२९	देह निषेध	४९	सम्यग्दृष्टि प
१४	मोक्ष की महिमा	३०	धिरता स्वरूप	५०	ज्ञान की महि
१५	मोक्ष फल	३१	मूल भूल	५१	मयम भेद
१६	मोक्ष राग	३२	विता निषेध	५२	यही आत्मा

❀ शुद्धि पत्र ❀

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्धि	शुद्धि
३	२	ज्ञानमय	ज्ञानमय
६	१८	श्रेष्ठ	श्रेष्ठ
१८	१०	ज्ञानम	ज्ञानम
३१	१०	दो	दो

सग के सबसगी डका के अनअगो

शैली-भूमिका

(धीर श्रमण)

जिनमत में ग्रंथ लिखने की दो शैली हैं एक आगम और दूसरी अध्यात्म। आगम शैली का आशय बहिरात्मा को अधुभ निमित्तों को दुःख का कारण और शुभ निमित्तों को सुख का कारण बताकर उसे अंतरात्मा बनाने का है। और अध्यात्म शैली का शुभ निमित्तों की भी दुःख का कारण बताकर परमात्मा बनाने का है। यह ग्रंथ श्रीमद् योगेश्वर आचार्य ने अध्यात्म शैली में प्रभाकर भट्ट को सम्बोधनाय रचा था। भट्ट जी का प्रश्न यह था कि हे प्रभो मुझे यह परमात्मा बताओ जो ससार के दुःखों से पार करे। तब आचार्य देव ने यह कहा कि तू बहिरात्मा पने को छोड़ कर अंतरात्मा बन और उसके भी सब व्यग्रहारों को छोड़ कर देखा तू ही तो परमात्मा है। यह व्यग्रहार छोड़ने का उपदेश पढ़ि मुन पर छल न प्रदण करना। यह तो जो श्लेच्छ घृत्ति छोड़ कर जो आय हुआ है उसे परमात्मा बनाने का है जैसे कसाई से हलवाई हुआ है उसे कपड़े की दुकान कराने के लिये लोग कहते हैं कि १०० कसाई और एक हलवाई ऐसा जानि जबतक गानपान है तबतक व्यग्रहार न छोड़ो। अब जिनमत में आगम और अध्यात्म शैली द्वारा अनादि पता जीव को किस प्रकार उठाया जाता है उसको समझो।

उदाहरण

१—जैसे—आवड़ खारड जमीन में पहले ट्रैक्टर फिर पटला फिर हल आदि चलाकर बीज बोया जाता है। नैसे ही अज्ञानपूर्वक “अह” वाले को “दासोह” फिर दासोह वाले को “सोह” और मोह वाले को क्षाण पूर्वक “अह” सिखाया जाता है।

२—दिसक को “दया” फिर “विवेकपूर्वक दया” अन्त में “सदया” (निष्प्रिया) सिखाया जाता है ।

३—जीवानीय के भेद न जानने वाले को इन्द्रियधारी जीव फिर रागद्वेष करने वाले को जीव अन्त में जानने देराने वाले को जीव बताया जाता है ।

४—पर को तिरस्कार करने की क्रिया रूप एक हाथ के हिलाने वाले को, सब साधारण को दोनों हाथ चोड़ना फिर परमार्थियों को दोनों हाथ जोड़ना अन्त में दोनों हाथों को अपने हृदय की ओर चोड़ना सिखाया जाता है ।

५—सत्र भट्ठी को पांच न्दम्वर तीन मकार का त्याग फिर २० अभक्ष का त्याग फिर सत्र रसों का त्याग फिर सब आहार का त्याग अन्त में वर्णाग्नि अन्न रागादि भावों का त्याग का उपदेश ।

६—सत्र पदार्थों को अपने भानने वाले को देह मात्र तेरी है फिर भाव मात्र तू है अन्त में मात्र जानने देखने वाला तू है ।

७—अयोग्य जड़ क्रिया वाला का योग्य पड़ क्रिया (योग्य कार्य पचन) फिर योग्य मात्र क्रिया फिर ज्ञान क्रिया का उपदेश है ।

८—अशुभ चिन्तन के निराकरण के जिन स्तुति पढ़ने फिर एभोकार मंत्र का जाप करना फिर अरहत् के स्वरूप चिन्तन करना फिर सिद्ध स्वरूप चिन्तन करना बताया है ।

ऊपर के सब उपाहरणों में से अर्थात्त वाक्य अभ्यास शैली का है और शेष सब आगम शैली के वाक्य हैं ।

❀ किन्तु ❀

ज्ञान जहाँ धारित नहीं, चारित जहाँ न ज्ञान ।

दुखों या कलिकाल में, नारक भोग या कान ॥



ॐ श्री श्रीगणेशाय नमः ॐ

ॐ श्री महा मुनि श्रीगंगाधर-प्रणीत ॐ

परमात्मप्रकाश

—ॐॐॐॐ—

मैं वन्दों वन्दों उन्हें, जो वन्दन के योग्य ।
श्रुत परमात्म प्रकाश के, दोहा करू मनोग्य ॥

संगल्लङ्घन

पुत्र हृष्ट ध्यानार्ति कर, कर्म इलक जलाय ।
नित्य निगूँन ज्ञान मय, उन मिदूनि मिर नाय ॥ १ ॥
मैं वन्दों उन मिदू को, जो अथ होहि अनन्त ।
शिव मय अनुपम ज्ञान मय, परम ममाधि द्यत ॥ २ ॥
मैं वन्दों उन मिदू को, जो निर्वाण चमत् ।
परम ममाधी अग्नि कर, अथ ईधन भस्मन्त ॥ ३ ॥

मैं चन्दों उन मिट्ट को, जो निर्वाण चमन्त ।
 ज्ञान गुरु त्रैलोक्य के, भव मागर न परन्त ॥ ४ ॥
 मैं चन्दों उन मिट्ट को, जो चमते निच माहि ।
 लोकालोसहि मर्ब को, यथा लागें भ्रम नाहि ॥ ५ ॥
 केवल दर्शन ज्ञान मय, फल सुख स्वभाव ।
 निन पर चन्दों भक्ति युत जो भावत सब भाव ॥ ६ ॥
 जो मुनि परम समाधि धर, परमात्म को ध्याय
 परमानन्द सु काखे, उन तय मो मिर नाय ॥ ७ ॥

परमात्मा कौन

यदि भाव से परम गुरु, अरु योगेन्द्र राव
 भट्ट प्रभाकर बीन बे, करक निर्मल भाव ॥ ८ ॥
 प्रभु चमते समार म, बीतो काल अनन्त
 किन्तु रच सुग नहि लहो, पायो दुख अतियन्त ॥ ९ ॥
 चहुँगति दुख से दुखीसा जो कोर्टे प्रभु होय
 उम दुख से जो काढ़ना, उसे बताओ मोय ॥ १० ॥

आत्म तीन प्रकार

पुनि पुनि चदौ पच गुरु, भाव हृदय में धार
 भट्टप्रभाकर सुनो तुम, आत्म तीन प्रकार ॥ ११ ॥

त्रिविध आत्मा जानक, तजि बहिरात्म भाव ।
 लखि सुनान से ज्ञानमय, परमात्मा स्वभाव ॥ १२ ॥
 बहिर रु अन्तर आत्मा, परमात्म मिलि तीन ।
 दह विषे थापा लखे, बहिरात्म सो चीन ॥ १३ ॥
 देह भिन्न कर नान मय, देखे ब्रह्म स्वरूप ।
 मो धिर परम समाधि में, अन्तर आत्म रूप ॥ १४ ॥
 लहा ज्ञान मय आत्मा, सकल कर्म कर हान ।
 अरु छोडा पर द्रव्यको, मो परमात्म जान ॥ १५ ॥

परमात्मा की पहिचान

त्रिभुवन बन्दित मिट्ठको, हरि हर जप प्रधान ।
 मनको धिर कर उमीको, तू परमात्म जान ॥ १६ ॥
 नित्य निरजन ज्ञान मय, परमानन्द स्वभाव ।
 जो ऐसा वह शांत शिव, जान उमी का भाव ॥ १७ ॥
 जो निज भाव न परिहरे, पर को गहे न लेश ।
 कवल सय मो जानता, सो शिव समता भेष ॥ १८ ॥
 जाके वरण न गध रम, शब्द फर्श नहि पास ।
 जाके जनम न मरण है, नाम निरजन तास ॥ १९ ॥
 जाके क्रोध न मोह मद, माया मान न पास ।
 जाके धान न ध्यान लख, नाम निरजन तास ॥ २० ॥

जाक पुण्य न पाप है, हर्ष विपाद न पाम ।
 जाक एक न दोष है, नाम निरजन ताम ॥ २१ ॥
 जाक ध्येय न धारणा मन्त्र तन्त्र नहि पाम ।
 मडल मुद्रा आदि नहि, वही दब है ताम ॥ २२ ॥
 बड शास्त्र गुरु मूर्ति से, जाना जाय न मान ।
 श्रेष्ठ ध्यान के गम्य है, सो शाश्वत भगवान ॥ २३ ॥
 कवल दशन ज्ञान मय, कवल मुक्त स्वभाव ।
 कवल वीरज जानना, उमका उत्तम भाव ॥ २४ ॥
 इत्यादिक लक्षण सहित जो प्रभु निष्कल श्रेय ।
 सो वह निबसे मुक्ति म तीन लोक का ध्येय ॥ २५ ॥

देह मे परमात्मा मान

जैसा निर्मल ज्ञान मय, वसे देव शिव दान ।
 तैसा ब्रह्म शरीर म, निबसे भेद न जान ॥ २६ ॥
 निमक देखे शीघ्र ही, पूर्व कर्म का हाम ।
 क्यों न लसे उम ब्रह्म को, जो तन करे निवास ॥ २७ ॥
 निमम इन्दी दुख सुख और न मन व्योपार
 उम आत्म सो मान तू कर पर का परिहार ॥ २८ ॥
 भेदाभेदहि दृष्टि से, निबसे दहादेह ।
 उम आत्म को मान तू, औरनि सो क्या नेह ॥ २९ ॥

जीव अजीव न एक कर

जावाजीव न एक कर, लक्षण भेद सुभेद ।
 पर को पर लसि मैं रह, आपा आप अभेद ॥ ३० ॥
 अमन अनेद्रिय नान मय, मृति रहित चिन्मात्र ।
 इन्द्रिय विषय न आतमा, यह लक्षण सुन पात्र ॥ ३१ ॥
 भव तन भोग विरक्त मन, जो आत्म को ध्याय ।
 तिमकी लम्बी चेलड़ी, सब रूपी नश जाय ॥ ३२ ॥
 देह दिवालय जो बसे, देव अनादि अनन्त ।
 कवल ज्ञान प्रकाश मय, सशय विन भगवन्त ॥ ३३ ॥
 तन बसते भी नहि छुये, तन को निश्चय मान ।
 तन से जाय न छुआ वह, मो परमात्म जान ॥ ३४ ॥
 माम्य भाव परणति हुआ, जो कोई प्रगटाय ।
 परमानन्द जनावता, मो परमात्म थाय ॥ ३५ ॥
 यदपि कर्म से बद्ध हैं, बसे देह के थान ।
 तदपि न निश्चय देह मय, मो परमात्म जान ॥ ३६ ॥
 निश्चय नय मे तन रहित, कर्म भिन्न अरु मान ।
 तदपि कह गठ देह मय, मो परमात्म जान ॥ ३७ ॥
 गगन अनत नद्वय इक, जैसे जग जिस ज्ञान ।
 प्रतिबिम्बित हो भासता, सो ईश्वर नित जान ॥ ३८ ॥

मुनि समूह कर ज्ञान मय, ध्यान योग्य जो ध्येय ।
 शिव कारण है निरन्तर, सो परमात्मसेय ॥ ३९ ॥
 जो जिय कारण पाय विवि, बहु विधि जग उपजाय ।
 तीन लिंग कर शोभता, सो परमात्म थाय ॥ ४० ॥
 जाके भीतर जग बसे, जग में जाको नाम ।
 जग बसता भी नहिं बसे, सो परमात्म खास ॥ ४१ ॥
 तन बसते भी हरि हरा, जिसे न अब तक जान ।
 दिखे न परम समाधि निन, सो परमात्म जान ॥ ४२ ॥
 जो उत्पत्ति व्यय कर सहित, या उत्पत्ति व्यय दान ।
 ऐमा तन में जिन लला, सो परमात्म जान ॥ ४३ ॥
 जिसके तन में निरमते, इन्द्रिय गाव बसाय ।
 उजड़ हो परभव गये, सो परमात्म थाय ॥ ४४ ॥
 जो निज इन्द्रिय पाच से, जाने विषय जु पाच ।
 इन्द्रिय विषय अगोचरा, सो परमात्म साच ॥ ४५ ॥
 जिसके प्रगट न बन्ध है, और नहीं सन्सार ।
 उसे जान परमात्मा, तज मन से व्यवहार ॥ ४६ ॥
 बेलि थके मण्डप बिना, ज्ञान यके विन ज्ञेय ।
 जिस पद में सब मामता, वह स्वभाब है ध्येय ॥ ४७ ॥

कर्म प्रगट काते मदा, निज निज काय परान ।
 कट्ट न जिय का कर सके, उम आत्म को मान ॥ ४८ ॥
 जो धर्मो से बद्ध मी, कर्म स्वरूप न होय ।
 कर्म न मी तिम रूप हों, उम आत्म को जोय ॥ ४९ ॥

एकान्त निराकरण

कइ कहे जिय सर्व मत, कई कई जड़ रूप ।
 कई कहे जिय देह मत, कई एक शून्य स्वरूप ॥ ५० ॥
 किसी दृष्टि जिय सर्वमत, किसी दृष्टि जड़ रूप ।
 किसी दृष्टि से देहमत दृष्टिहि शून्य स्वरूप ॥ ५१ ॥
 कर्म रहित जो आत्मा, केवल ज्ञान स्वरूप ।
 लोफालोकहि जानता, इमसे व्यापक रूप ॥ ५२ ॥
 आत्म ज्ञान ठहर हुवे, जिय क इन्द्रिय ज्ञान ।
 नाश होय इम कारणे, जड़ मी जीर पिछान ॥ ५३ ॥
 शुद्ध जीव कारण बिना, घटे पड़े नहि मान ।
 चरम शरीर प्रमाण है, कइते जिनवर जान ॥ ५४ ॥
 बहु विधि आठो कर्म युत, दोष अठारह और ।
 शुद्ध जीव के एक नहीं, इमसे शून्य द्वितीर ॥ ५५ ॥
 जीव न उपजा किसी स और न कटु उपजाय ।
 द्रव्य भाव से नित्य है, विनाशीक पर्याय ॥ ५६ ॥

द्रव्य स्वरूप

द्रव्य नाम उमको कहे, जो गुण पर्यय वान ।
 नित्य रूप से गुण रहे, कर्म से पर्यय जान ॥ ५७ ॥

तु आत्म को द्रव्य लख, गुण लख दर्शन जान ।
 पर्यय चहुगति भाव तन, कर्म जनित पहिचान ॥ ५८ ॥

जीव कहे हैं नाटि से, जीव जनित नहिं कर्म ।
 कर्म जनित नहिं जीव है, दोय अनादी परम ॥ ५९ ॥

यह आत्म व्यवहार से, कर्म हेतु को पाय ।
 बहु विधि भावहिं परणवे, पुण्य पाप में घाय ॥ ६० ॥

आठ तरह के कर्म ये, जीवों के पहिचान ।
 तिनसे आच्छादित हुआ, लह न पद निर्वान ॥ ६१ ॥

विषय कषाय तलीन सुत, मोही जीव प्रदश ।
 लगे अणू सम उन्हीं को, कहते कर्म जिनेश ॥ ६२ ॥

पंचेन्द्रिय मन मित्र अरु, भिन्नहिं मर्म विभाव ।
 चहुगति दुख भी मित्र है, कर्म जनित जिय भाव ॥ ६३ ॥

जीवों क उपजावता, सुख दुर नाना कर्म ।
 जाने दखे आतमा, ऐसा निश्चय मर्म ॥ ६४ ॥

जीवों के उपजावता, बन्ध मोन सब कर्म ।
 कछ न करता आतमा, ऐसा निश्चय मर्म ॥ ६५ ॥

आत्म पगु समान है, स्वयं न आवे जाय ।
 तीन लोक के मध्य विधि, लावे अरु ले जाय ॥ ६६ ॥
 निज निज ही है देह पर, निज पर द्रव्य न होय ।
 पर भी द्रव्य न निज बने, निश्चय मत को जोय ॥ ६७ ॥
 नहिं उपजे नहिं बिनसता, बध न मोक्ष कराय ।
 ऐमा चित्तय जीव को, निश्चय नय से माय ॥ ६८ ॥
 जनम मरण अरु नहिं जरा, चिन्ह वर्ष नहिं कोय ।
 मज्जा एक न जीव के, निश्चय नय को जोय ॥ ६९ ॥
 तन के जनम ह जरा धय, तन क र्ण अनेक ।
 तन के रोग अनेक है, तन के लिङ्ग अनेक ॥ ७० ॥
 जरा मरण तन क निग, भय मत ह निय मान ।
 अजर अमर जो भ्रष्ट है, उमको आत्म जान ॥ ७१ ॥
 छिद मिदे या नष्ट हो, यह शरीर है धीर ।
 निर्मल आत्म ध्यान से, पावेगा भूत तीर ॥ ७२ ॥
 कर्म जनित हैं भार मय, अन्य अचेतन दर्श ।
 निश्चय जीव स्वभाव से, मित्र बखाने सर्व ॥ ७३ ॥
 आप ठोढ़ कर ज्ञान मय, अन्य पराये भार ।
 उनको तनकर ह निया, भावो आप स्वभाव ॥ ७४ ॥
 अष्ट कमे से रहित अरु, मरुल दोष विन वाय ।
 दर्शन ज्ञान चरित्र मय, उम आत्म को ध्याय ॥ ७५ ॥

निज को निज जो जानता, मत दृष्टा जिय होय ।
मत दृष्टा होता हुआ, कर्म रह नहि कोय ॥ ७६ ॥

मिथ्यादृष्टि की मान्यता

पर्यय रत जे जीव हैं, सो मिथ्याती याय ।
बहु विधि बाधे कर्म को, तिनसे मव मदराय ॥ ७७ ॥
हृष्ट धन चिरुने कर्म हैं, भारी बन्ध समान ।
ज्ञान चातुरे जीव को, पटके छोटे धान ॥ ७८ ॥
जीव परणवे भ्रम सहित, लखे विपजें तत्त्व ।
कम रचित जे भाव हैं, उनको अपने कन्व ॥ ७९ ॥
मैं गौग मैं श्यामला, मैं हूँ वर्ण अनेक ।
मैं पतला मैं धूल हूँ, एमा मूढ़ विवेक ॥ ८० ॥
मैं अति ब्राह्मण वैश्य अरु, मैं चरी अरु शोष ।
मैं नर नागी नपुमर, माने मूढ़ निशेष ॥ ८१ ॥
रूपवान् बुद्धा तरुण, पंडित उत्तम शूर ।
पृष्ठ स्वेत पट दिगम्बर, माने सब ही कूर ॥ ८२ ॥
मात पिता घर नारि सुत, सुता मित्र सब दर्व ।
माया जाली मूढ़ यह, माने अपने सर्व ॥ ८३ ॥
दुख कारण जे विषय हैं, तिन सेरे सुर अर्थ ।
मिथ्यादृष्टी जीव यह, क्या क्या करता व्यर्थ ॥ ८४ ॥

सम्यग्दर्ष्टि की भावना

काल लघि को पाय कर, ज्यो ज्यों मोह नशाय ।
 त्यों त्यों दर्शन मो लहे, तिमसे रूप लखाय ॥ ८५ ॥

आत्म न गौग मावला, आत्म लाल न होय ।
 आत्म घृक्षम धूल नहि, ज्ञानी ज्ञानहि जोय ॥ ८६ ॥

आत्म ब्राह्मण वैश्य नहि, और न चरी होय ।
 नर नारी नहि नपु सक, ज्ञानी जानहि जोय ॥ ८७ ॥

आत्म बोध न दिगम्यर, श्वेताम्यर नहि होय ।
 आत्म एक न लिंग है, ज्ञानी ज्ञानहि जोय ॥ ८८ ॥

आत्म गुरु न शिष्य है, स्वामि न सेवर मान ।
 कायर शूर न आत्मा, ऊच न नीच पिद्वान ॥ ८९ ॥

आत्म मनुज न देव है, और न पश पिद्वान ।
 नारक कमी न आत्मा, जाने माघु प्रधान ॥ ९० ॥

पण्डित भूर्त न आत्मा, धनी रक नहि लेश ।
 बालक शृद्ध न तरुण है, ये सब कर्म विशेष ॥ ९१ ॥

पुन्य पाप धरमाधरम, काल खन्द नभ जोड ।
 इनमें एक न आत्मा, चेतन भावहि छोड ॥ ९२ ॥

आत्मोपदेश

आपुहि मयम शील तप, आपुहि दर्शन ज्ञान ।
 आनम शाश्वत मोक्ष पद, निज अनुभवता जान ॥ ६३ ॥
 दर्शन मोट न अय है, अन्य न कोइ ज्ञान ।
 अन्य न मोट चरण हैं, आत्म छोड पिछान ॥ ६४ ॥
 अन्य तीर्थ मत जाय जिय, अन्य गुरु मत जोड ।
 अन्य दव मत चिन्तवे, आत्म विमल हि छोड ॥ ६५ ॥
 एक आप ही दर्श हैं, अन्य सर्व व्यवहार ।
 इससे आपा चिन्तिये, जो त्रिभुवन में मार ॥ ६६ ॥
 आपा निमल ध्याइय अन्य मद बेकाम ।
 निमक ध्यायक पावन, इक चरण में निज वाम ॥ ६७ ॥
 निमक निर्मल भाव म, वसे न आत्म आन ।
 निमक तप अरु श्रुत पठन क्या करने निवान ॥ ६८ ॥
 इक आत्म क ज्ञान से, होवे जग का नान ।
 कारण केवल ध्यान म, वसता मरुल जहान ॥ ६९ ॥
 निज स्वभाव लवलीन र, यह विरोधता धोक ।
 उम स्वभाव म शीघ्र ही, दखे लोका लोक ॥ ७० ॥
 आप प्रकाशे स्वपर को, जैसे गवि आकाश ।
 इसम शका मत करे, ऐसा वस्तु विलाम ॥ ७१ ॥
 जैसे निर्मल जल विष, तारे प्रमद प्रकाश ।
 जैसे निमल आत्म मे, लोका लोक प्रकाश ॥ ७२ ॥

आत्म के मान से, होवे निज पर मान ।
आत्म को मान बल, हे सेवक तू जान ॥१०३॥

ज्ञान की प्रधानता

निज का निमि ज्ञान से, होवे पल में बोध ।
मान विक्रमित करो, अन्य अधिक को रोध ॥१०४॥

आत्म को ज्ञान लख, जो निज करे पिछान ।
प्रदेश में लोक्रुवत, ज्ञानहि गगन प्रमान ॥१०५॥

आत्म में भिन्न हूँ, वे भी होइ न ज्ञान ।
तेनों की छोड़ कर, तू आत्म पहिचान ॥१०६॥

ज्ञान के गम्य है, क्यों कि देखता मान ।
तजे उन तीन को, उससे निज को जान ॥१०७॥

तब ज्ञानी ज्ञान मय लखे न आत्म रूप ।
तब मूढ़ न पावता ज्ञान मयी चिद्रूप ॥१०८॥

आत्म दीवता, उममें जाना जाय ।
निज की जानकर, उममें शीघ्र गमाय ॥१०९॥

गण अरु हरि हग जन, निमका करते ध्यान ।
स अति जो ज्ञान मय, सो परमात्ममान ॥११०॥

नी मति उममें बसे, सो अनि पुरुष बखान ।
मति तैसी गती, ऐसा नियम प्रधान ॥१११॥

जैसी मति तैसी भती, उसको पर भव पाय ।
उस कारण पर ब्रह्म को, छोड़ न पर को ध्याय ॥११२॥

आत्मा की प्रधानता

जीव द्रव्य से भिन्न जड़, उसको पर पहिचान ।
पुढगल धर्मो धर्म नम, कालहि पचम जान ॥११३॥
जो आध क्षण भी करे, परमात्म से राग ।
जलें पाप ज्यों काठ गिर, मस्य करे लघु आग ॥११४॥
मय चिन्ता को छोड़ कर, हे जिय निश्चय होय ।
चित्त परम पद धारके, देव निरजन जोय ॥११५॥
जो निज दर्शन परम सुख, पावेगा बल ध्यान ।
वह सुख निज को छोड़ कर, त्रिभुवन म न पिछान ॥११६॥
जो मुनि लहे अनन्त सुख, निज आत्म को ध्याय ।
मो सुख इन्द्र न ले सक, देवी कोटि रमाय ॥११७॥
निज दर्शन से नत सुख, जो जिनकर के जोय ।
तो सुख भ्रमण विराग क, अन्त क्रिया म होय ॥११८॥
निर्मल मन में दीसता, ब्रह्म शक्ति प्रत्यक्ष ।
जैसे घन चिन गगन मे, रवि भाये अति स्वच्छ ॥११९॥
निर्मल देव न दीसता, राग रंजे, मन माहि ।
जमे मैले काँच में, सुख न दिसे अम नाहि ॥१२०॥

मृग नैनी जिसके बसे, तिसे न ब्रह्म विचार ।
 एक ग्यान में जिम तरङ्ग, बने न दो तलवार ॥१२१॥
 निर्मल मन में बुद्ध के, देव अनादि निवास ।
 जिमि सरवर में हस रत, तैमा मुझे त्रिकाश ॥१२२॥
 देव न मन्दिर पैल में, लेप चित्र में नाहिं ।
 नित्य निरजन ज्ञान मय, है समचित के माहि ॥१२३॥

मोक्ष की महिमा

भी गुरु मुझसे कृपा कर, कहो वचन परमार्थ ।
 मोक्ष मोक्ष फल मोक्ष मग, जो होवे सत्यार्थ ॥१२४॥
 शिष्य मोक्ष अरु मोक्ष फल, जो पूछा शिव हेत ।
 उमको बिना मावित सुनो, अरु लख मेद ममेत ॥१२५॥
 धर्म अरु काम में, मोक्ष मकल शिर मोर ।
 कहते ज्ञानी पुरुष हमि, अन्य न सुख का ठौर ॥१२६॥
 यदि उत्तम नहिं होय तो इन सब में शिव लोक ।
 तो तीनों को छोड़ जिन, क्यों जाते शिव लोक ॥१२७॥
 मोक्ष न उत्तम, सुख करे, तो उत्तम नहिं होय ।
 पशु मी बन्धन बद्ध युत, इच्छा करे न कोय ॥१२८॥
 जग से अधिक न होय यदि, गुण गण मुक्ती माहि ।
 तीन लोक निज शीश पर, उसे धारता नाहि ॥१२९॥

उत्तम सुख न देय यदि, उत्तम मोक्ष न होय
 सदा काल हे जीव तो, सिद्ध न सेवे जोय ॥१३॥
 हरि हर ब्रह्मा जिनवा, मुनिगण भव्य गुजान
 परम निरञ्जन मन रखे, सब प्यावे शिव ज्ञान ॥१३॥
 त्रिभुवन में हम जीव को, मोक्ष धान को छोड़
 सुख कारण नहि अन्य हे, हमसे शिव मन जोड़ ॥१३॥
 कर्म कलक विमुक्त निध, मो परमात्म प्राप्त
 उसको शिव नू जानता, कहे बुद्ध विन्यास ॥१३॥

मोक्ष फल

दर्शन ज्ञान अनन्त सुख, नितके छेद न होय
 उसके है यह मोक्ष फल तद विपरीत न कोय ॥१३॥

मोक्ष मार्ग

शिव कारण जिय का परम, चारित दर्शन ज्ञान
 ते मुनि तीनों आत्मा, निश्चय करके ज्ञान ॥१३॥
 मनि देखे अनुचर, निज से निज को कोय
 दर्शन ज्ञान चरित्र युत, शिव कारण जिय सोय ॥१३॥
 जो 'मार्ग' न्यायहार नय, दर्शन ज्ञान चरित्र
 'उमको' घर है जीव तू, जिससे होय पवित्र ॥१३॥

दशन स्वरूप

द्रव्य यथा विध जान सच, और करो भद्धान ।
 ही आत्म का भाव या, अविचल दर्शन जान ॥१३८॥
 उन छह द्रव्यों को लखो, जिनसे जग भरपूर ।
 आदि अन्त से रहित वह, कहें ज्ञान के सूर ॥१३९॥
 जीव द्रव्य चेतन सपत्ति, पच अचेतन खास ।
 पुदगल धर्माधरम नभ, मित्र काल आकाश ॥१४०॥
 मूर्ति रहित और ज्ञान मय, परमानन्द स्वभाव ।
 निरचय लख तू आत्मा, नित्य निगजन भाव ॥१४१॥
 पुदगल छह विध मूर्ति युत, शेष अमूर्तिक मान ।
 बुद्ध कहें धर्माधरम, गति धिति काग्य जान ॥१४२॥
 सकल द्रव्य जिनमें बसे, निरचय करके मान ।
 उमको तू आकाश लग, ऐसा बच भगवान ॥१४३॥
 वर्तन लक्षण बान को, काल द्रव्य तू मान ।
 रत्न राशि ज्यों मित्र भिन, त्यों अणु भेद पिछान ॥१४४॥
 जीव रु पुदगल काल युत, इन्हें छोड़ सब दर्ब ।
 इतर सु निज निज देश म, जान अखण्डित मर्व ॥१४५॥
 जिय पुदगल तज शेष सच, गमनागमन विहीन ।
 ऐसे वस्तु स्वरूप को, कहने ज्ञान प्रवीन ॥१४६॥

धर्माधर्मरू एक जिय, कहे अमरुख्य प्रदेश
 गगन अनन्त प्रदेश है, बहु विधि पुदगल देश ॥१४॥
 जितने द्रव्य कहे गये, लोकाकाश निवास
 एक क्षेत्र वासी यदपि, तदपि स्वगुण में वाम ॥१५॥
 जीवों क ये द्रव्य सब, निज निज कार्य कर्मा
 इससे चहुँगति दुख को, महते भव भटकाहि ॥१६॥
 दुख कारण ह जीव लख, पर द्रव्यों के भाव
 मोक्ष मार्ग म होई रत, शीघ्र बोध को जाव ॥१७॥
 भली भाँति व्यवहार से, दर्शन म जु पख
 अथ तू ध्यानरु चरण सुन, जिससे हो निर्वाण ॥१८॥

ज्ञान स्वरूप

ये जैसे तिष्ठे हुए, तैसा उनको मा
 वही आत्म का भाव है, अथवा मय्यज्ञान ॥१९॥
 जान मान कर आप पर, जो पर भावहि त
 वह निज शुद्ध स्वभाव ही, शुध के चारित होय ॥२०॥
 स्तनत्रय का भक्त जो, उमका लक्षण ये
 गुण समूह तज आत्म के, अन्य न उसके ध्येय ॥२१॥
 जो स्तनत्रय नेष्ट को, कहे आत्मा पु
 मो आराधन मोक्ष अरु, ध्यावे स्वात्म शुद्ध ॥२२॥

गुण मय निर्मल आत्म को, जो ध्यावे नित मान ।
 परम श्रमण वह नियम से, शीघ्र लहे निर्वाण ॥१५६॥
 मकल वस्तु को लगे अरु, ज्ञान प्रथम जो होय ।
 भेद रहित वस्तु लखे, वह दर्शन तू जोय ॥१५७॥
 दर्शन पीछे उपजता, जीवों का विज्ञान ।
 भेद सहित वस्तु लखे, वही अचल है ज्ञान ॥१५८॥

चारित्र्य स्वरूप

सुख दुख सहता है जिया, ज्ञानी ध्यान तलीन ।
 कर्म निर्जरा हेतु तप, उपधि रहित सो चीन ॥१५९॥
 जिस दुख सुख को मुनि सह, मन में धरि समभाव ।
 उसमें सवर पुण्य अब, होव सहज स्वभाव ॥१६०॥
 जब तक रहता मुनिवरा, आत्म रूप में लीन ।
 तब तक सर्व विरुन्ध बिन, सब निर्जर चीन ॥१६१॥
 पूर्व कर्म सो छय करे, आगत धमन न देय ।
 मकल परिग्रह छोड कर, उपसम भाव करेय ॥१६२॥
 दर्शन नान चरित्र जहँ, तहँ होते समभाव ।
 ममचित बिना तू एक है, कहते श्री जिन राव ॥१६३॥
 जब तक ज्ञानी उपशमी, तब तक समय मान ।
 वह कपाय वश होय जब, तब मयमी न जान ॥१६४॥

तज मन से उस वस्तु को, निससे जगे कषाय ।
 वस्तु कषाय विहीन जब, तब सद् बोध लढाय ॥१६५॥
 मन म तत्वातत्त्व लख, जो स्थिर सम भाव ।
 सो अति मुखिया जगत में, अरु रत आत्म स्वभाव ॥१६६॥
 जो करता ममभाव को, ताके दूषण दौय ।
 एक करे बधु हतन, दुतिय मत्त जग होय ॥१६७॥
 जो करता मम भाव को, ताके दूषण और ।
 शत्रु छोड क भाजता, परमात्म के ठौर ॥१६८॥
 जो करता मम भाव को, ताके दूषण और ।
 विकल होय कर एकता, चन्ता जग मिर मौन ॥१६९॥
 जिममें मध जिय सो रहे, वाम जागे माधु ।
 जिमम मध जिय जग रहे, तामे सोवे माधु ॥१७०॥
 करे न कोई राग को, ज्ञानी तज ममभाव ।
 इम कारण से ज्ञान मय, पावे आत्म स्वभाव ॥१७१॥
 निंदा पुति नहि भ्रमण के, पदे पनावे नाहि ।
 मोक्ष हेतु समभाव को, देखे निश्चय माहि ॥१७२॥
 उपधि विषे भी परम मुनि, करे न रागरु द्वेष ।
 उपधि भिन्न जिसने लखा, आत्म स्वभाव अशेष ॥१७३॥
 विषय विष भी परम मुनि, करे न रागरु द्वेष ।
 विषय भिन्न जिसने लखा, आत्म स्वभाव अशेष ॥१७४॥

देह विषे भी परम मुनि, कर न गगरु द्वेष ।
 देह भिन्न जिमने लखा, आत्म स्वभाव अशेष ॥१७५॥
 व्रत अव्रत मे महा मुनि, कर न गगरु द्वेष ।
 बन्ध हतु जिमने लखे 'दोनों भाव विशेष' ॥१७६॥

पुन्यपाप स्वरूप

बन्ध मोक्ष कारण तनो, जो न लगे निन भाव ।
 वही मोह वश करत है, पुन्य पाप का चाव ॥१७७॥
 दर्शन ज्ञान चरित्र मय, आत्म लखे न कोय ।
 वही जीव उन उभय को, करता गिर हित जोय ॥१७८॥
 जो नहि माने जीव यदि, पुन्य पाप मम कोय ।
 मो चिर सहता दुःख जग, मोह अन्धकारित होय ॥१७९॥
 शीघ्र बुद्धि शिव की रुख, पाप देय कर दुस्ख ।
 तो वह सुन्दर है जिया, कहते ज्ञान प्रमुख ॥१८०॥
 शीघ्र बुद्धि शिव की हरे, पुन्य दय रर सुख ।
 तो वह सुन्दर नहि जिया, कहत ज्ञान प्रमुख ॥१८१॥
 दर्शन मनमुख जो मर, मो अति सुन्दर मान ।
 पुन्य कर दर्शन विमुख, मो सुन्दर न पिछान ॥१८२॥
 दर्शन मनमुख जो रह, पापे सुख अनन्त ।
 निम् पिन करता पुन्य भी, महता दुस्ख अनन्त ॥१८३॥

शुभ से धन धन से जु मद, मद से मति में मोहु ।
 उससे अब हो इसलिए शुभ मेरे मत होहु ॥१८४॥
 देव शास्त्र गुरु भक्ति से, होता पुन्य प्रधान ।
 किन्तु न होषे कर्म क्षय, कहते जिन भगवान ॥१८५॥
 देव शास्त्र मुनि वरन सो, जो करता है देव
 पाप क्षय कर नियम से, भव में अमें विशेष ॥१८६॥
 पाप उदय से नरक पशु, पुन्य उदय सुर थान
 मिथ उदय से मनुज है, उभय नशे निर्माण ॥१८७॥
 वन्दन निन्दन क्रमण को, कारण पुन्य पिछान ।
 शुद्ध करे न करारता, फरते मला ७ मान ॥१८८॥
 वन्दन निन्दन क्रमण को, कर न ज्ञानी एक ।
 शुद्ध स्वरच्छ अरु ज्ञान मय, भाव न छोड़े टेक ॥१८९॥
 वन्दन निन्दन क्रमण में, निसके भाव अशुद्ध ।
 उमके समय नहि कहा, कारण चित्त अशुद्ध ॥१९०॥

शुद्धोपदेश

शुद्धहि समय शील तप, शुद्धहि दर्शन ज्ञान ।
 शुद्धों के हों कम क्षय, इससे शुद्ध प्रधान ॥१९१॥
 भाव शुद्ध निव है उसे, धर्म समझ कर धार ।
 जो नहुँगति क दुख से, सहजहि दह निकास ॥१९२॥

शिव का मार्ग एक है, शुद्ध भाव धर ध्यान ।
जो मुनि चल उस भाव से, किम पावे निर्वान ॥१९३॥
जहँ अच्छा तहँ जाव जिय, कर अच्छा जो होय ।
किन्तु न जबतक शुद्ध मन, तबतक मोक्ष न तोय ॥१९४॥
शुभ भावनि से पुन्य है, अशुभ भाव से पाप ।
इन दोनों से विरहिता, कर्म न बाधे आप ॥१९५॥

ज्ञान की महिमा

लहे दान से भोग अरु, तप से मुरपति होय ।
जन्म मरण से रहित पद, लहे ज्ञान से जोय ॥१९६॥
देव जिनेश्वर हमि कहें, ज्ञानी मुक्ति लहाय ।
ज्ञान विहीना जीवदा, चिर समार भ्रमाय ॥१९७॥
ज्ञान हीन के मोक्ष पद, हे निय कभी न जोय ।
बहुत नीर के मयें जिम, चिहना हाथ न होय ॥१९८॥
आत्म ज्ञान विन ज्ञान से, कुछ न कारज होय ।
दुरा कारण उस ही तरह, हे जिय तप भी जोय ॥१९९॥
आत्म ज्ञान बढ है नहीं, जियमें पर मो प्रीति ।
सूर्य किरण के सामने, तम फैले किस रीति ॥२००॥
आत्म छोड़ि कर बुद्ध के, अन्य न सुन्दर कोय ।
इससे रमें न पिपय मन, परमार्थी का जोय ॥२०१॥

आम प्राण सब छोड़ कर, मन न क्यै न प्रात ।
निमने परहन पति नगा, उम कोय विपरीत ॥२००॥

अन्धक भाव

जो चिय भोगे रमै कल, मनै युर धर भाव ।
वही कर्म को पाँचना, कइ मोह स्वभाव ॥२०१॥
जो चिय भोग कय कल, मल युर तन भाव ।
वह न कर्म को पाँचना, गरिब नाग रगय ॥२०२॥
अम मात्र भी गग से, जय तर गये स्वार्थ ।
तब तर मुक्ति न लह जिय, यति गाता परमार्थ ॥२०३॥
श्रुत प्रायश्चर्य कर, पर न लगे परमार्थ ।
तदपि न मुक्ती लहे जिय, बिन जाने परमार्थ ॥२०४॥
शास्त्र पढ़न भी मूर्ख है, जो नहि तजे विरक्त्य ।
तन बसते परमात्म की, नहि कइता गति अन्य ॥२०५॥
पान निमित्त सब श्रुत पढ़े, निश्चय हम जग माहि ।
किन्तु न निमक पान हो, वह क्या भूख नाहि ॥२०६॥

अज्ञान दशा

तीर्थ तीर्थ प्रति अमल से, भद्र न मुक्ती पाहि ।
क्यों कि ज्ञान बिन हे जिया, वह मुनिवर ही नाहि ॥२०७॥

मुनि जानी अरु मूढ़ में, अन्तर भारी मान ।
 जानी छोड़ देह भी, भिन धीव से जान ॥२१०॥
 इस सब ही त्रैलोक्य को, बहु विधि धर्म उपाय ।
 लेना चाह मूढ़ जन, यह अन्तर जिन गाय ॥२११॥
 चेला चेली पुस्तकें, लख घरख हरपाय ।
 घन्ध हेतु जानी निरख, इन मय म शम्पाय ॥२१२॥
 पिछी कमण्डल पुस्तकें, चेला चेली और ।
 मुनिनि मोह उपनाय कर, डाले खोटे ठार ॥२१३॥
 जिसने जिनवर भेष धर, शिर लोंचा ले राख ।
 किन्तु न छोड़ा सग मय, मो निन ठग वे गार ॥२१४॥
 जो घर कर जिन भेष को, इष्ट वस्तु पुनि लेय ।
 वही बमन कर उमी को, पीछे ग्रहण करेय ॥२१५॥
 जो यश कीरत कारणे, आत्म ध्यान दें छोड़ ।
 वही लोह की कौल को देवालय दें तोड़ ॥२१६॥
 बाह्य वस्तु से आपसी, जो मुनि लगने महन्त ।
 वह निश्चय परमार्थ को, नहि जाने वच मत ॥२१७॥

समदृष्टि रखो

परमात्मा ज्ञायकनि के, छोटा बड़ा न कोय ।
 जीन सर्व पर ब्रह्म हैं, ऐमा निश्चय होय ॥२१८॥

रतनप्रय का मङ्ग जो, उमरा लक्षण देह ।
 किमी दह म जिय रह, भेद न करता तेह ॥२१६॥
 जग वामी मय नियनि मे, मृग्य करत भेद ।
 नानी बबल ज्ञान से, मय को लगे अमेद ॥२२०॥
 सर्व जीव है ज्ञान मय, जन्म मरण से हीन ।
 गुण प्रदश उन मयनि के, एरु बराबर चीन ॥२२१॥
 जीवा का लक्षण लखा, जिमने दर्शन जान ।
 इससे मत नर भेद तू, जो मन प्रगटा भान ॥२२२॥
 जग धमत सब नियनि म, जो नहि करते मग
 वे परमात्म प्रकाश का, जाने निमल अग ॥२२३॥
 राग द्वेष को दूर कर, दरे सबहि समान
 ये मम भाव निरास कर, गीघ लह शिव थान ॥२२४॥
 जीवा का लक्षण लखा, जिमने दर्शन जान
 देह भेद उनक विष, फिर ज्ञाना क्या मान ॥२२५॥
 देह भेद से नियनि म, जो करता बहु राम
 वह लक्षण नहि जानता, चर्या जान दग राम ॥२२६॥
 तन मूलम अरु चादरा, विधि वश होत घाल
 और जीव सब मय लगह, उतने ही नर काल ॥२२७॥
 मय निय गघ्र मित्र अरु, अपने और परान
 ऐक्य भाव का देगता, नाक आत्म पिछान ॥२२८॥

जो नहि माने जीव यह, मव जिय एक स्वभाव ।
 उमरे रह न भाव मम, जो मवसागर नाव ॥२२६॥
 जीव मे ये कर्म कृत, कर्म न जीव कहाय ।
 क्योंकि उन्हां से भिन्न हो, फललान्धि की पाय ॥२२७॥
 एक कगे मत दो कगे, मत क वर्या विशेष ।
 क्योंकि शुद्ध मम ये रसें, मम त्रिभुवन के देश ॥२२८॥

परसग निषेध

परम जानते परम मुनि, पर मसगहि छोड ।
 पर ममर्ग जु ध्यान म, देय त्रिगुप्ती तोड ॥२२९॥
 जो मम भावहि बाहिरा, उनका करो न मग ।
 वे डारें भ्रम मित्रु मे, और दह मव अग ॥२३०॥
 भद्रों क गुण नष्ट हो, दुष्ट जनों के सग ।
 लोह सग से अग्नि जिय, घन मेलने मव अग ॥२३१॥
 ह निय तज द मोह को, मोह न अच्छा होय ।
 मर्ष लोक मे मोह रत, दुष्ट महते ही जोय ॥२३२॥
 नमन रूप घर भयानक, जले मृतर वत काय ।
 मित्रा म मृदु अन्न को, इच्छि न क्यों शरमाय ॥२३३॥
 जो तू चाहे ह जिया, तप द्वादश का मार ।
 तो मन बच अरु काय से, भोजन गृहि विसार ॥२३४॥

जो मृदु रस से तुष्ट हैं, नीम रसों रूपाय ।
 ने मुनि भोजन गृह हैं, उह न प्रद्व लग्नाय ॥२३८॥
 तिनली रूप रु मीन रस, अरु गन्ध मृग गीत ।
 गन पगन से नाग लख, शानी रस न प्रीत ॥२३९॥
 ह जिय तज द लोभ को, लोभ न अज होय ।
 मर्व लोरु म लोभ गन, दुर महते ही जोय ॥२४०॥
 तले निहाइ उपरि घन, रागे मदमा अग ।
 फटै पिटै उम सोच म, अनि लोह क मग ॥२४१॥
 हे जिय तज द प्रेम का, प्रेम न अज होय ।
 मर्व लोरु म प्रेम गन दुर महते ही जोय ॥२४२॥
 जल मायन मन रण, जिममें पुनि पुनि दुर ।
 तिली तल क मग कर, शानी पिले प्रमुर ॥२४३॥
 वही धन्य अरु म-पुत्र, उहो जिये जिय लोर ।
 जो न पतित यावन समय, मा तिमता वे गेरु ॥२४४॥

वेराग्य की दृढ़ता

शिव माधन जिन वर किया, तन के बहु विधि राज ।
 मिठा भानी जीव तू, कर न थातम कान ॥२४५॥
 ह जिय तू ममार म, अपत लह अति दुर ।
 अष्ट कर्म को जो नशे, तो पावे अति मुर ॥२४६॥

अश मात्र हे जीव तू, मह न मरे दुख कोय ।
 तो भव कारण कर्म को, क्यों करता है जोय ॥२४७॥
 जग धन्वे में लगे सब, करें कर्म भ्रम माहि ।
 शिख कारण पर ब्रह्म को, इक अण चिते नाहि ॥२४८॥
 सर्व योनि में मटक कर, जीव सहे दुख पूर्ण ।
 पुत्र कलत्रहि मोहिता, जब तक ज्ञान अपूर्ण ॥२४९॥
 जिय मत जाने आपने, स्वजन मित्र घर काय ।
 कर्मधीन अनित्य कर, श्रुत में मुनि गण गाय ॥२५०॥
 मोक्ष न पावे जीव तू, कर चिन्ता घर द्वार ।
 इसस उत्तम चिन्त तप, जिमसे हो भव पार ॥२५१॥
 बधकर लाग्यो जियन को, जो तू करता पाप ।
 पुत्र कलत्रहि काण्णे, सो तू भोगे आप ॥२५२॥
 हे जिय जो तू जियनि को, मार चरि दुख देय ।
 उसका फल उम दृष्टि से, अमित गुणा ही लेय ॥२५३॥
 जीव हने से नरक गति, अभय दान स्वर धाम ।
 ये दोनों मग पास है, जो रचि मो कर काम ॥२५४॥
 मुढ़ अन्य सब नाश युत, भ्रम से मत तुष कृति ।
 शिख भग निर्मल प्रीत कर, घर सुत तिय से छुटि ॥२५५॥
 हे जिय सबही नाश युत अविनाशी नहि कोय ।
 जीव साथ जावे न तन, यह दृष्टान्तहि जोय ॥२५६॥

देव देव थल शाल गुरु, तीर्थ धर्म पद काव्य ।
 मय वस्तु अच्छी बुरी, ईधन वत् हो जाव्य ॥२५७॥
 एक प्रह्न को छोड़ कर, सब जग रचना शेष ।
 क्षण भगुर मय वस्तु है, यह लख बात विशेष ॥२५८॥
 सूर्य उदय जो दीप्तता, अस्त भये मो दाह ।
 इससे हे जिय धर्म घर, तज धन यौवन चाह ॥२५९॥
 श्रावक भया न मुनि भया, पाकर नर पर्याय ।
 ताहि बुढ़ापा खायगा, मरे नरक गति पाय ॥२६०॥
 ह जिय जिन पद भक्ति कर, सब सुख जन छुटकाय ।
 उम दादा से काम भया, जो समार अमाय ॥२६१॥
 जिमने किया न तप चाण, पाक निर्मल चित्त ।
 उसने आत्म को ठगा, ले नर जन्म पवित्र ॥२६२॥

विषय निषेध

ये पचेद्रिय ऊँट है, इसको चरन न देहु ।
 यह घर हर सब विषय को, मटकारे भव येहु ॥२६३॥
 कठिन ध्यान गति हेनिया, मन थिरता नहिं खाय ।
 मूर्ति विषय में सुख भवति, उन में पुनि पुनि जाय ॥२६४॥
 बट है ध्यानी जो लह, दर्शन ज्ञान चरित्र ।
 विषय से राह्य हो, ध्यावे नद पवित्र ॥२६५॥

विषय सुख दो दिव्यक, पुनि दुख की भरमार ।
 निज रुन्हे पर हे जिया, मत कुन्हाडी मार ॥२६६॥
 मत्ता विषय जो पर हर, मैं पूजू पग ताम ।
 निमरा गजा गीश है, स्वत मुडा बढ राम ॥२६७॥
 चहि नायक वग उरो, निमसे वग हों और ।
 तर की जड के नगत जियि, सुखे पत्ता मौर ॥२६८॥
 ह निय विषयाशक्त तू, निर्धर काल गमाय ।
 निज अनुभव को अचलकर, अवग मोक्ष को पाय ॥२६९॥
 निन अनुभवको छाँडि मुनि, अन्य कही मत जाय ।
 निन अनुभव म लीन चिन, दुख महते ही थाय ॥२७०॥
 फल अनादि अनादि निय, भव मागर भी नन्त ।
 लहा न जिय समकृत तथा, भने न श्री अरहत ॥२७१॥

देह निषेध

पर निराम को जान जिय, हे जिय पाप निराम ।
 यम फाँसी से मण्डिता, ह निय कागवास ॥२७२॥
 बह न जिनम आपनी, उम म पर क्या होय ।
 हमसे निन हित छोडकर, पर शरण मत जोय ॥२७३॥
 उर निज अनुभव भाव डर, जिससे मुख की प्राप्त ।
 अन्य न ह जिय चित्तों, जिसे मोक्ष अप्राप्त ॥२७४॥

बलि जाऊ नर जन्म ये, दीएत तो कहू मार ।
 भू गाढ़े से सडत है, दाह किये हो चार ॥२७५॥
 मर्दन उबटन क्रिया कर, मधुर देह आहार ।
 सब निष्कल यह देह की, जैसे शठ उपकार ॥२७६॥
 जैसे जनर नरक घर, वैसे हे जिय काय ।
 मैल मूत्र से भरा नित, क्रिय करता रति लाय ॥२७७॥
 दुख पाप अरु अशुचि सब, तीन लोक के लेय ।
 इन से तन निर्मित किया, विधि ने बैर धरेय ॥२७८॥
 हे निय दह घिना बनी, रमने क्यों न लजाय
 मन निरिचत कर धर्म मे, अविचल प्रीत लगाय ॥२७९॥
 हे जिय त्यागो देह सो, देह मली नहि होय
 दह मित्र जो जान मय, उस आतम को जोय ॥२८०॥
 दुख राखइ इस देह की, मन म लख के त्याग
 जिमम श्रेष्ठ न सुख लहे, उममे बुढ़ किम राग ॥२८१॥

थिरता स्वरूप

निजाधीन जो सुख है, उमम सर मतोप
 अपर सुख चिन्तक जिया, चित्त दाह नहि जोय ॥२८२॥
 ज्ञान छोड़ कर आप का, अन्य न द्वितिय स्वभाव
 एमा लखकर हे जिया, तज पर वस्तु भाव ॥२८३॥

निसर्ग चले न चित्त जल, इन्द्रिय विषय कषाय ।
 उसकी आतम हे जिया, निर्मल हो प्रगटाय ॥२८४॥
 निमने वश कर चित्त को, किया न आतम शुद्ध ।
 वह क्या करता योग से, जिसे न शक्ति विशुद्ध ॥२८५॥
 आत्म ज्ञान भय छोड़ कर, हर अन्य का ध्यान ।
 जो परलति अज्ञान में, किम् लह कवल ज्ञान ॥२८६॥
 शून्य शब्द जो ध्यावता, मैं पूज पग तास ।
 भाव ममरसी अन्य से, पुन्य पाप नहि पाम ॥२८७॥
 होने को वस्ती करे, वस्ती को कर शुन्य ।
 मैं पूजू उम श्रमण को, जिमके पाप न पुन्य ॥२८८॥
 मोह गले अरु शीघ्र ही, मन धिरता हो धार ।
 ह स्वामी उस वचन को, कहो अन्य को डार ॥२८९॥
 स्वास नाक से निकल कर, जये ममाधि विलीन ।
 मोह गले तब शीघ्र अरु, मन धिरता म चीन ॥२९०॥
 मोह गले अरु मन मरे, स्वामारवाम रु माधि ।
 पगम ज्ञान उत्पन्न हो, जिमका वाम ममाधि ॥२९१॥
 जो ममाधि में मन धरे, लोकालोक प्रमाण ।
 मोह गले जब शीघ्र ही, पावे पद निर्माण ॥२९२॥

मूल भूल

दह पमत भी नहि लग्या, आनम देव आन
 मयाधि मपरम मन बिना, ह म्वापो नष्ट ॥२६॥
 मरुल मग भी नहि तना, कर न उपशमे भाव
 मोक्ष मार्ग भी नहि लखा, जहँ यतियों से चाव ॥२७॥
 दुर्धर तप भी नहि रिया, जो गोमे निच पोष
 पुन्य पाप नहि छप रिये, रिम मसार निरोध ॥२८॥
 दान न मुनिवर से दिया, पूने पग न निनश
 पच पाम गुरु नहि नमे, किम पाव शिव देश ॥२९॥
 नेत्र अध खुले बन् से, क्या पाता है ध्यान
 नहि हो पावे पाम गति, निश्चय धिक्ता धान ॥३०॥

चिन्ता निषेध

चिन्ता राज टे जीव तू, तो छूटे मसार
 चिन्ता गत निन राज भी, लहे न हमारा ॥३१॥
 क्यों फगता दुर्बुद्धि तू, भव कारण व्यवहार
 शुद्धात्म को जान कर, मन विरुलप को मार ॥३२॥
 रूप पच अह पच रम, सर्व गग तन सेव
 चित्त रोरर ध्याय तू, अनन्त आत्म दव ॥३३॥
 यह अविनाशी अत्म को, जिम स्वरूप से ध्याय
 निम स्वरूप से परखवे, यथा फटिक परणाय ॥३४॥

यही आत्म परमात्म है, कर्म हेतु परमाय ।
 निम क्षण जाने आपसी, उम क्षण ईश्वर थाय ॥३०२॥
 जो परमात्म ज्ञान मय, मो मैं देव अनन्त ।
 जो मैं मो परमात्मा, भावो अम सज मत ॥३०३॥
 चित मे परमेश्वर मिला, परमेश्वर मे चित ।
 दोना इरमिल होगये, अरघ चडाउँ कित ॥३०४॥

भिन्नता

जैसे निर्मल फटिक से, सर्व रग हैं दूर ।
 तैसे आत्म स्वभाव मे, कर्म भाव सब दूर ॥३०५॥
 जैसे निर्मल फटिक मणि, आत्म भाव त्यों मान ।
 काय मलिनता देखकर, आत्म मलिन न जान ॥३०६॥
 लाल वस्त्र स होय नहि, देह न जैसे लाल ।
 देह लाल से त्यों सुधी, आत्म न माने लाल ॥३०७॥
 जीर्ण वस्त्र से ज्यों सुधी, देह न माने जीर्ण ।
 दह जीर्ण से त्या सुधी आत्म न माने जीर्ण ॥३०८॥
 वस्त्र नष्ट से ज्यों सुधी, देह न माने नष्ट ।
 देह नष्ट से त्यों सुधी, आत्म न माने नष्ट ॥३०९॥
 अलग वस्त्र से देह सो, जैसे माने बुद्धे ।
 अलग देह से आत्म सो, तैसे माने बुद्धे ॥३१०॥

यह तन तेरा गुरु है क्यों कि दुःख उपजाय ।
 जो हम तन को कर दाय, उमके तू गुण गाय ॥३११॥
 उन्मत्त लाय म र्म हो, कन चदन वा भोग ।
 स्वयं आगया वह यही, परम लाभ का योग ॥३१२॥
 निहुर वचन सुन हनिया, मह न मरु मन तोर ।
 शीघ्र ध्यान पर नद कर, जिसमे मन सब ओर ॥३१३॥
 जीव विलक्षण कर्म वश धारे भव तु अनेक ।
 विस्मय क्या जो था मयिनि, पद न भर जल एक ॥३१४॥
 अवगुण मर ग्रहण कर, जो होवे मनोप ॥
 मोम सुर कारण हुआ, यह लख करे न रोष ॥३१५॥
 हे जिय दुर से तू डर, तो चिन्ता को त्याग ।
 य न मात्र की गन्ध भी, रस्ती दुर से राग ॥३१६॥
 मत कर चिन्ता मोक्ष की, चिन्ता मोक्ष न देख
 निगसे जीव वैधा हुआ, उनसे क्या शिव लेय ॥३१७॥

समाधि

परम समाधि मगुह म, जो घुम कर हो लीन
 विमल ध्यान वह उद्भवा, जिसमे भव मल धीन ॥३१८॥
 सब चिन्त्य क नाश को, परम समाधि कहाव
 हमम मुनिवर छोडते, सर्व शुभाशुभ भाव ॥३१९॥

घोर तपस्या जो करे, अरु मय श्रुत से युक्त ।
 तो भी परम समाधि विन, शक्ति स्वरूप न युक्त ॥३२०॥
 विषय कषाय विनाशकर, जो न समाधि धरत ।
 हे जिय वे परमात्म के, नहि आराधक सत ॥३२१॥
 जो मुनि परम समाधिधर, लखे न आत्म अन्त ।
 वे बहुविध मय दुखिनिके, भोगे काल अनन्त ॥३२२॥
 भाव शुभाशुभ जब तलक, दूर न होवे कोय ।
 तपतक मन में जिन कहे, परम समाधि न होय ॥३२३॥

अरहन्त सिद्ध

सकल विकल्पनि नाशकर, शिव मारग थिर होय ।
 कर्म घातिया नाश कर, आत्म अग्रहत जोय ॥३२४॥
 दिव्य ज्ञान से सतत ही, जाने लोफालोक ।
 निश्चय परमानन्द मय, आत्म अग्रहत घोर ॥३२५॥
 जो जिय केवल ज्ञान मय, परमानन्द स्वभाव ।
 वह परमात्म पर पर, हे जिय आत्म मात्र ॥३२६॥
 सकल कर्म अरु दोष से, जो जिन देव विहीन ।
 उसको ब्रह्म प्रकाश तू, ह जिय निश्चय चीन ॥३२७॥
 केवल दर्शन ज्ञान मुख, वीर्य अनन्त जु पाय ।
 वह जिन देव जु परम मुनि, जानहु परम प्रकाश ॥३२८॥

परमात्म या परम पद, हरि हर मन्ना पुढ ।
 परम प्रकाशरु मनि रहें, सो निन दब विशुद्ध ॥३२९॥
 कर्म ध्यान से नाश कर, जो होता शिव नन्त ।
 उसे रहा निन देव ने, हे विष मिट्ट मन्त ॥३३०॥
 हित कारक ये मर्न र, शाश्वत सुख स्वभाव ।
 सब काल निवसे उहाँ, ह निष पाय स्वभाव ॥३३१॥
 जन्म मरण से रहित अरु, चहुँ गनि दुर से मुक्त ।
 कवल दशन तान मय, उम सुख म मयुक्त ॥३३२॥

ग्रन्थ महिमा

श्रुत परमात्म प्रकाश को, जो चिन्ते धर भाव ।
 सर्व कर्म को जीत कर, मो परमात्म पाव ॥३३३॥
 जो जाने ह भक्ति से, श्रुत परमात्म प्रकाश ।
 लोकोलोक प्रकाश का, कवल नान प्रकाश ॥३३४॥
 जो परमात्म प्रकाश का, नाम अपे नित कोय ।
 मोह शीघ्र उनका गले, अरु जग स्वामी होय ॥३३५॥
 जो भवे दुर से डर गया, अरु इच्छे निगल ।
 वह परमात्म प्रकाश क, परम योग्य है जान ॥३३६॥
 जो परमात्म भक्ति युत, रमे न विषय कयाय ।
 व परमात्म प्रकाश क, अपर योग्य मुखाय ॥३३७॥

ज्ञान विलक्षण शुद्ध मन, मत्स्य पुरुष जो कोय ।
 सो परमात्म प्रकाश क, योग्य कह मुनि जोय ॥३३८॥

लक्षण छन्द विवचिता, यह परमात्म प्रकाश ।
 शुद्ध भाव भाषा करे, चह गति दुख का नाश ॥३३९॥

इसमे गहो न पण्डिता, पुनुरुत्ती का दोष ।
 भट प्रभाकर हतु म, पुनि पुनि आत्म पोष ॥३४०॥

जो मने इसम मिया, युक्तायुक्त सरान ।
 समा करो उमम मुमे, निन परमारथ नान ॥३४१॥

ज्ञान रूप यह तत्व है, परम श्रमण नित ध्याय ।
 दह मिना यह तत्व है, वमे मर निय काय ॥३४२॥

दिव्य देह म तत्व यह, जगत श्रेष्ठ मुनि ध्याय ।
 निसे मिद्व यह तत्व है, ते मुनि शिव पद पाय ॥३४३॥

जैवतो अरहत पद, शरु समाधि मुनिराय ।
 फल नान स्वभाव निज, ताहि न विपथी पाय ॥३४४॥

समाप्त



• श्री धीनरागाय नम •

• श्री महा मुनि चौरमागर प्रणीत •

❀ योगसार ❀

योगसार को योग से, बन्दो तीनो काल ।
योगसार भाषा सुगम, दोहा रचूँ रसाल ॥

निर्मल ध्यान लगाय कैं, कर्म रुलर जलाय ।
अपना पद प्राप्त किया, उस यातम सिर नाय ॥ १ ॥
चार घातिया नाश कर, नन्त चतुष्टय पाय ।
तिम जिनवर क चरण नमि, रचों काव्य सुखदाय ॥ २ ॥
जो भव से भय भीत है, मोह लालसा मग ।
तिन क हित दोहा करूँ, कर मनको डक रग ॥ ३ ॥
काल अनादि अनादि जिय, भव सागर जु अनन्त ।
मिथ्या दर्शन वश मया, सुख न लहा दुख बन्त ॥ ४ ॥

जो भव दुख से - भय करे, तो पर भाव विहाय ।
 निर्मल आत्म ध्यान करि, जिससे शिवसुख पाय ॥ ५ ॥
 बहिर रु अन्तर आत्मा, परमात्म तय जोड़ ।
 अन्तरात्म पनि ब्रह्म भज, बहिरात्म पन छोड़ ॥ ६ ॥
 मिथ्या दर्शन वश मया, परमात्म नहि पाय ।
 उमको बहिरात्म कहा, पुनि पुनि भव भटकाय ॥ ७ ॥
 नो ध्याव पर ब्रह्म को, सब पर भाव निडार ।
 अन्तर्गत् उसको कहें, जो त्यागे समार ॥ ८ ॥
 निर्मल निष्कल शुद्ध जिन, विष्णु उद्भ शिव गात ।
 परमात्म उमको कहा, उसम रहू न आत ॥ ९ ॥
 रह आदि पर द्रव्य म, जो आत्म रुचि लाय ।
 उमको बहिरात्म कहा, पुनि पुनि भव भटकाय ॥ १० ॥
 रह आदि पर द्रव्य म आत्म लेश न कोय ।
 रह लख है जिय आत्म को, तू आत्म ही जोय ॥ ११ ॥

भारद्वष्टि

जो आत्म को आत्म लग्य, तो निवाण बनाय ।
 ममके पर को आत्म यदि, तो समार अमाय ॥ १२ ॥
 जो चित इच्छा तप करे, आप आप को ध्याय ।
 शीघ्र नहें सो परम गति, फिर मसार न पाय ॥ १३ ॥

बन्ध मोक्ष परिणाम से, निनवर क्रिया बखान ।
 यही ममक कर है जिया, उन मावा को जान ॥ १४ ॥
 आत्म न जाने श्रु करे, पुन्यहि पुन्य विशेष ।
 तो नहि पावे मोक्ष सुख, पुनि मर अप विशेष ॥ १५ ॥
 इह निज दशन परम है, निश्चय करू मान ।
 ह निय कारण मोक्ष रा, अन्य न करू विद्वान ॥ १६ ॥
 मागगणा सुख थान का, कथन ममक व्यवहार ।
 निश्चय से लख आत्म मय, निमसे पन पद धार ॥ १७ ॥
 धर वसते भी जो रखें, हषाहय विचार ।
 निशुद्धि प्यात्र दव जिन, ते शिव शीघ्र मिथार ॥ १८ ॥
 जिन सुमिगे निन चित्तो, जिन प्यात्रो मन घोष ।
 निमक व्यापे परम पद, एक निमिष म होय ॥ १९ ॥

आत्म निर्णय

निनवर अर शुद्धात्म म, भेद न करू विद्वान ।
 मोक्ष हतु ह जीव तू, यह निश्चय कर मान ॥ २० ॥
 जो जिन से लख आत्मा, यह मिद्वान्त जु सार ।
 यही ममक कर है जिया, तन दे मायाचार ॥ २१ ॥
 जो भगवन मो म यथा, जो म मो भगवान ।
 यही समझ कर ह जिया, रूछू न बिकल पदान ॥ २२ ॥

जो हैं शुद्ध प्रदेश कर, लोकालोक प्रसार ।
 उसे मदा आत्म समझ, शीघ्र लहे निर्धार ॥ २३ ॥
 निश्चय लोक प्रमाण है, तन प्रमाण व्यवहार ।
 इस स्वभाव लख आत्मदा, शीघ्र होय भव पार ॥ २४ ॥
 लख चोरामी में फिरत, बीतों काल अनन्त ।
 किन्तु न समझि को लहा, यह मशय अतियन्त ॥ २५ ॥
 शुद्ध सचेतन बुद्ध जिन, केवल नान स्वभाव ।
 ऐसा निगुनि आत्म लख, जो इच्छा शिव लाय ॥ २६ ॥
 जब तक ध्याय न जीव तू, निर्मल आत्म स्वभाव ।
 तब तक मोक्ष न पायगा, जहँ भावे तहँ जाव ॥ २७ ॥
 जो मयजग का ध्येय चिन्त, निश्चय आत्म वरदान ।
 निश्चय नय सङ्गि कथन, इमम आति न जान ॥ २८ ॥

व्यवहार निषेध

अत तप सयम शील ये मृदुहि मुक्ति न दाय ।
 एक परम सुध भाव का, जब तक ज्ञान न पाय ॥ २९ ॥
 जो निर्मल आत्म लखे, अत सयम से युक्त ।
 लहे सिद्ध सुख शीघ्र वह, कह नान सयुक्त ॥ ३० ॥
 अत तप सयम शील ये, कछु न कारन दाय ।
 एक परम सुध भाव का, जब तक ज्ञान न पाय ॥ ३१ ॥

वसे पुन्य से स्वर्ग पद, अथ से नरक निवास ।
 इन तन ध्यावे आत्मा, तो पावे शिव नाम ॥ ३२ ॥
 व्रत तप सयम शील ये, भव मानो व्यवहार ।
 शिव कारण वश एक लग्न, जो त्रिभुवन म भार ॥ ३३ ॥
 आप आप से जान कर, अरु छोड़े पर भाव ।
 मो पाव शिवपुरी भट, उहते श्री जिन राव ॥ ३४ ॥
 नव पदार्थ छह द्रव्य अरु मात तत्त्व जिन गान ।
 मो भास व्यवहार से, तिन्ह यत्न मो जान ॥ ३५ ॥
 सर्व अचेतन जान इक, जीव मचेतन मार ।
 जिसे जान कर पग्न मुनि, शीघ्र लहे भव पार ॥ ३६ ॥
 यदि निर्मल आत्म लखे, तब के सब व्यवहार ।
 दन निनेरवर इमि कहै, शीघ्र लह भव पार ॥ ३७ ॥

त्रिवेक सूचक

जीवाजीवहि भेद को, लखे सु नाता मान ।
 शिव कारण इतना कहा, ह जिय मत सरान ॥ ३८ ॥
 यदि तू चाह मोक्ष को, ऐसा सत सरान ।
 कवल ज्ञान स्वभाव सुत, आत्म को पहिचान ॥ ३९ ॥
 को समाधि पूजा कर, कोन जु फर्मा फर्ग ।
 को मैत्री को उलट कर, भव थल आत्म दर्श ॥ ४० ॥

गुरु प्रमाद से जवतलक, लखे न थातम राम ।
 तब तक भ्रम कुतीर्ष म, थौर कर टग काम ॥ ४१ ॥
 तीर्थ दिवालय देव नहि, इमि भामें भगवान ।
 देह दिवालय देव जिन, त निश्चय कर जान ॥ ४२ ॥
 दह दिवालय देव जिन, जन दगों जिन भवन ।
 मुक्त हास्यमा भांमता, जिम मिष्टा नृप भवन ॥ ४३ ॥
 मृद दिवालय देव नहि, नहि मिल लेप त चित्र ।
 दह दिवालय दन जन लग्न ममचित मे मित्र ॥ ४४ ॥
 तीर्थ दिवालय देव जिन, रहत है सब रोष ।
 दह दिवालय जो लगे, सो बिरला ही रोष ॥ ४५ ॥

धर्म प्रेरणा

जनम मरण भयभीत यदि, तो निय धर्म रगय ।
 धर्म रमायन पिपत ही, अनर अमर पद पाय ॥ ४६ ॥
 धर्म न दीखे पठन में, पुस्तक दिखे न धर्म ।
 धर्म न दीखे मठ बसे, लोंबे कश न धर्म ॥ ४७ ॥
 राम द्वेष को त्याग कर, जो निज वाम करेय ।
 उसे धर्म जिनवर बडा, जो परम गति देय ॥ ४८ ॥
 आयु गले मन नहि गल, आशा त्रेत्र न जाय ।
 मोर बने निज हित नही, इमि समाग भवाय ॥ ४९ ॥

ज्यों मन विषयों में रमें, त्यों निन ये रमि जाय ।
 ह जिय तो योगी कहें, शीघ्र मोक्ष को पाय ॥ ५० ॥
 जैसे जगजित नरक घर, तैसे लखो शरीर ।
 आत्म भार निर्मल करें, शीघ्र लहे भव तीर ॥ ५१ ॥
 जग धन्ये में पसे मय, करें न निन पहिचान ।
 हम कारण से जीव ये, लहें न पद निर्वाण ॥ ५२ ॥
 शास्त्र पद भी मूर्ख है, जो न करें निन धान ।
 हम कारण से जीव ये, लहें न पद निवाण ॥ ५३ ॥
 मन इन्द्रिय छुट जाय तो, फेरि न दूखो कोय ।
 राग न्यून है जाय तो, महज आत्मघिति होय ॥ ५४ ॥

स्वपर बोध

पुद्गल अन्यरु अय जिय, अन्य सर्व व्यवहार ।
 तन पुद्गल गट जीव को, शीघ्र होय भव पार ॥ ५५ ॥
 जीवहि प्रगट न समझत, और न करें पिछान ।
 न न छुटें ममार से, हमि चिनदब चसान ॥ ५६ ॥
 दीपक दिनकर रतन अरु, और दूध पाषाण ।
 कनक रूप्य अम्ली फटिक, नव दृष्टान्त पिछार ॥ ५७ ॥
 तन्हाकि पर जी लगे, यथा जूय आकाश ।
 पात्र प्राप्त वत् ज्ञान को, अरु निन कर प्रकाश ॥ ५८ ॥

नम नुटामाश है तैसे आत्म शुद्ध ।
 कितु नड आमाश है, आत्म चेतन शुद्ध ॥ ५६ ॥
 नाह नष्टि गय जा लखे, भोग न निव अगरी ।
 फिर न जन्म मृत्यू कर, पिये न माता दीर ॥ ६० ॥
 अगगर्हि सुन्दर मर्मकि, यह गसर नड मान ।
 मि या मोह निवारि क, जडहि न अपना जान ॥ ६२ ॥
 निन स निन को लखे स, क्या फल नहा लहाय ।
 इससे कवल नान ग्रत, जागवत मुर को पाय ॥ ६२ ॥
 जो पर भावहि त्याग गर, निन से निज को ध्याय ।
 कवल ज्ञान जु पाय कर, भव से छुड़ी पाय ॥ ६३ ॥
 उम पडित को धन्य है, जो पर भावहि छोय ।
 लोमालोह प्रकाश का, विमल आत्महि ओय ॥ ६४ ॥
 श्रावक हो या श्रमण हो, जो करता निल वास ।
 शीत्र लह सो मोघ सुख, जिनवर बच इमि राम ॥ ६५ ॥
 बिरले जाने तत्त्व को, बिरले ठुक्क सुनन्त ।
 बिरले ध्यावे तत्त्व सों, बिरले तत्त्व धरन्त ॥ ६६ ॥

त्रैराग्य

स्वप्न न मेरे मात्र इक, सुख दुख के दातार ।
 हम विचार से शीघ्र ही, नाश होय संसार ॥ ६७ ॥

इन्द्र पण्डित नरद भा शरण न गम्य शीघ्र ।
 शरण गति निन नानिमान निन न निन रा जोय ॥ ६८ ॥
 उपन विनसे छत्रना, मुग्ध स्व भोग एव ।
 नरक मग्न म जाय सर, लह मित्र पत्र गद ॥ ६९ ॥
 यदि तू मय बल छत्रला तो पर भावदि छोड़ ।
 आत्म ध्यान कर वानपय, शोध मोक्ष सो जोड़ ॥ ७० ॥
 लखें पार सो पाप हा, उमा मय जग होय ।
 लखें पुन्य को पाप मम, उमा विगला वीर्य ॥ ७१ ॥
 जैसे माखल लोह की, तैस रचन जोय ।
 तनइन शुभ अरु अशुभरा, तब तू गानी होय ॥ ७२ ॥
 तेरा मन निर्ग्रन्थ जय, तब तू भी निर्ग्रन्थ ।
 जय तू है निर्ग्रन्थ निय, तब पाव गिव पथ ॥ ७३ ॥
 ज्यो बट मध्ये जीव है, यीन मध्य बट मान ।
 ज्यो तन म भी दब लख, जो त्रिलोक्य प्रधान ॥ ७४ ॥

हेयाहेय

तो जिन सो म हू उसे, भज भ्रम तज सिर मौर ।
 गिव शरण को हू जिया, मत्र तत्र नहि और ॥ ७५ ॥
 द्वय त्रय चउ अरु पांच छह, सात आठ नव मान ।
 इत्यादिक परमात्म के, ये सब लक्षण जान ॥ ७६ ॥

गग द्वेय नन दृग मात्त, ना उगता निन वाम ।
 गात्र मोक्ष बड़ पावता, एमा निन वच वाम ॥ ७७ ॥
 गग द्वेय अरु मोड़ नन, जा मननत्रय धार ।
 द- गात्रवत सुग पावता, एमा निन वच मार ॥ ७८ ॥
 चउ कदाय मना रहित, नन चनुष्टय धार ।
 उस जान तू आत्मा, जिनसे हो मत्र पार ॥ ७९ ॥
 पच परावतन गहित, पच मिद्ध गुण युद्ध ।
 उसे कहा परमात्मा, निश्चय नय सं युद्ध ॥ ८० ॥
 निज ना दशन जान नाग, निन ना चारित मान ।
 निज जो मयम जील नय, निन जो प्रत्याग्यान ॥ ८१ ॥
 जो निन पर जो जानना, सो पर जो दे त्याग ।
 उसे जानि मन्याम तू, रहन परम विगम ॥ ८२ ॥
 रतनत्रय मयुद्ध निय, श्रेष्ठ तीर्थ गिर मोर ।
 शिव कारण को ह निषा, दत्र तत्र नहि और ॥ ८३ ॥
 जो दसे सो दर्श दे, जो चाने सो जान ।
 पुनि पुनि निनको भावता, सो चारित्र पिछान ॥ ८४ ॥
 जहा आत्म तहँ मङ्गल गुण, जिनपर देव परमान ।
 इससे मुनिजन नित करे, श्रेष्ठ आत्म पहिचान ॥ ८५ ॥
 तू इकला इन्द्रिय रहित, मन वच काय विहीन ।
 निन से निज को जान तू, शुद्ध होय शिवा लीन ॥ ८६ ॥

बन्ध मोक्ष जर तरु लम्बे, तरु तरु बन्धहि पाय ।
महज रूप में रमि रह, तो शिव गति लहाय ॥ ८७ ॥

सम्यग्दर्श की महिमा

सम्यग्दर्शी जीव का, दुर्गति गमन न होय ।
यदि जावे तो बड़ा भी, पूरा कर्म को मीय ॥ ८८ ॥
निज स्वरूप जो रमि रहे, तब क मर व्यवहार ।
बहु समदर्शी जीव ही, शीघ्र होय मर पार ॥ ८९ ॥
निमक समकित सुगन्ध है, बहु अलोक्य प्रधान ।
आनन्द सुख निधान मय, पावे करल ज्ञान ॥ ९० ॥
अनर अमर गुणगण निलय, जहाँ आत्म विर होय ।
बड़ा जीव निरैन्द्व है, पूरा सचय खोय ॥ ९१ ॥
कमल पत्र जिम तरु से, मलिल लिप्त नहि होय ।
निज स्वभाव तब उत ताह, कर्म लिप्त नहि होय ॥ ९२ ॥
जो सम सुख में लीन है, पुनि पुनि निज को ध्याय ।
शीघ्र कर्म क्षय बहु करे, फिर शिवपुर को जाय ॥ ९३ ॥

ज्ञान की महिमा

पुरुषाकार प्रमाण यह, आत्म शुद्ध जिन गाय ।
दीखे गुणगण निलय अरु, निर्मल तेज पुराय ॥ ९४ ॥

अशुचि देह से भिन्न कर, शुद्धात्म को चीन ।
 मो जाने सब शास्त्र अरु, शाश्वत सुख तलीन ॥ ९५ ॥
 जो नहि जाने आप पर, नहि त्यागे पर भार ।
 पर जाने मय शास्त्र को, तदपि न शिर सुख पाय ॥ ९६ ॥
 मय विकल्प से रहित हो, परम ममाधी पाय ।
 वह सुख अनुभूत तो करे, सो शिर सुख कहाय ॥ ९७ ॥
 पुनि यदि अथवा मय जपि, अरहत् मिदू स्वरूप ।
 ध्यान भेद ये चार हैं, कहे कैली भूष ॥ ९८ ॥

सयम भेद

सर्व नान मय जीव लख, जो धारे सम भार ।
 मामाधिक उमको रहा, प्रगट करली गर ॥ ९९ ॥
 राग द्वेष क त्याग से, जो होते मम भाव ।
 मामाधिक उमको रहा, प्रगट करली राग ॥ १०० ॥
 हिंसा दिक को त्याग कर जो निज में धिर होय ।
 उमे द्वितीय चारित रहा, फल पनम गति जोय ॥ १०१ ॥
 मिथ्यात्म को त्यागकर, जो लह दर्शन शुद्धि ।
 शीघ्र लह वह मोक्ष फल, सो परिहार विशुद्धि ॥ १०२ ॥
 उदय न तीन कषाय हैं, उदय एवम हर लोभ ।
 दक्षम चरण उमको कहा, जिनपर ने निन धोम ॥ १०३ ॥

यही आत्मा

जिनजिनवर अरु सिद्ध सच, अरु आचार्य स्वरूप ।
 उप ध्याय अरु साधु मन, परमास्थ निय रूप ॥१०४॥
 आत्म व्यापक नित्य है, हरि हर तत्त्वा बुद्ध ।
 निन इतर सर्वत्र ह, अरु अनन्त शिव शुद्ध ॥१०५॥
 इन लक्षण से लक्षित, जो अति निष्कल देव ।
 बही दह म निरमता, तिम में भू न मेव ॥१०६॥
 जो सिध अवतर हो चुक, या अब कोई होय
 निज दर्शन स होहिने, इममें भ्राति न कोय ॥१०७॥
 भव दुख से भयभीत है, योग चन्द्र मुनि धीन
 निज सरोजन अर्थ में, इन दोहों को जीन ॥१०८॥

समाप्त

❀ त्रयाभासी ❀

व्यवहाराभासी

व्यवहारी जिन वचन सुन, उड़त रहे ले पक्ष ।
निश्चय पिन कैसे कहें, रहे शख के शख ॥

निश्चयाभासी

परमार्थ जिन वचन सुन, उड़त रहे ले पक्ष ।
सयम पिन कैसे कहें, रहे शख के शख ॥

मिश्राभासी

कहि निश्चय व्यवहार कहि, उड़त रहे ले पक्ष ।
मैत्री पिन कैसे कहें, रहे शख के शख ॥

उपाय

दो नय त्रिषय विरोध को, स्याद्वाद से जीत ।
नमन होत मिथ्यात के, ममयसार नों प्रीत ॥

कैसे

चर्चा म व्यवहार नय, सरधा म नय शुद्ध ।
दो नय गरा साधन करे, वही जीव प्रति युद्ध ॥

नास्त्ययय-नय कथन पन्तर नय पक्ष होना एक स्वाभाविक
मा है किन्तु जो व्यवहार को बाहर और निश्चय को भीतर धारण
करते हैं वे पुरप न्याद्वाद रूप अरहत शम्भ से नय विरोध को जीत
आत्मा में स्थिर होते हैं और अल्प काल में निर्वाण प्राप्त करते हैं ।